मौत की सौदागर बनी दवा परीक्षण कम्पनियां

स्वास्थ्य मंत्री ने संसद को बताया कि ''दवा परीक्षण के लिए अनुमति देने और उन पर निगरानी रखने की प्रक्रिया को काफी सख्त किया गया है। लेकिन इसके बावजूद हम दवा परीक्षण से होने वाली मौतों को रोक नहीं पाये हैं। सरकार की सख्ती का विदेशी दवा कम्पनियों और उनके देशी दलालों पर कितना असर हुआ, इसे हम सरकारी आंकड़ों से ही समझा सकते हैं। 2010 में 668, 2011 में 438 और 2012 में 436 मरीज दवा परीक्षण के कारण मौत के मुंह में समा गये। पिछले 5 सालों में कुल 2,644 लोगों का मरना यह दर्शाता है कि दवा कम्पनियों के लिये हमारे देश की जनता की कीमत विलायती चूहों से अधिक नहीं है।

औसधि और प्रसाधन कानून-1945 में 2005 में किये गये संशोधन प्रस्ताव में परीक्षण के दौरान सबसे ज़्यादा जोखिम उठाने वाले मरीजों के लिए मुआवजा और बीमा राशि बढ़ाने के बजाय, सरकार ने दवा कम्पनियों का ही ख्याल रखा। तभी तो दूसरे देशों की तुलना में भारत के पीड़ितों के मुआवजे और बीमा की राशि में जमीन आसमान का अंतर है। 2011 में जिस कम्पनी ने नाईजीरिया की एक स्त्री को दवा परिक्षण के मुआवजे के तौर पर लगभग 30 लाख रुपये मुआवजा दिये, उसी कम्पनी ने भारत में दवा परीक्षण के दौरान हुई मौत पर सिर्फ ढ़ाई लाख रुपये का मुआवजा दिया। इस तथ्य से हमारी सरकार और स्वास्थ्य विभाग का घिनौना चेहरा सामने आ जाता है। पिछले सात सालों में इन्हीं की मेहरबानी से विदेशी कम्पनियों ने दवा परीक्षण के दौरान मरने वाले हजारों रोगियों में से सिर्फ 40 मृतकों को औने-पौने मुआवजा देकर छुट्टी पा ली।

नयी दवाओं का परीक्षण सबसे ज़्यादा जोखिम भरा होता है। इसीलिए इन दवाओं का परीक्षण सबसे पहले चूहों पर किया जाता है, इन्सानों पर नहीं। लेकिन हमारे देश में ऐसा नहीं है। दवा नियंत्रक कार्यालय के अनुसार भारत में दवा परीक्षण कानून लागू होने के बाद जून 2012 तक कुल 475 नये रासायनिक तत्वों से बनी दवाओं के परीक्षण की इजाजत दी गयी। इस काम के लिये 57,303 मरीजों को चुना गया, जिनमें 39 022 लोगों पर परीक्षण पूरा हो गया और अभी भी 18,281 लोगों पर परीक्षण चल रहा है। इन लोगों पर कुल 475 दवाओं का परीक्षण किया गया, जिनमें से सिर्फ 17 दवाओं को ही भारत के बाजार में उतारा गया। परीक्षणों के दौरान 2,644 लोगों को अपनी जान गवानी पड़ी, जिनमें 80 लोगों की मृत्यु दवाओं के नकारात्मक प्रभाव के चलते हुई। इसकी पुष्टि दवा कम्पनी और डाक्टरों ने भी की है। जन स्वास्थ्य पर काम करने वाले संगठनों द्वारा बाकी लोगों की मौत की जांच की मांग की जा रही है। उनका कहना है कि अगर निष्पक्ष जांच की जाय तो परीक्षण के दौरान होने वाली सभी मौतों का कारण दवाओं का नकारात्मक असर ही मिलेगा, जिसे दवा कम्पनी और डॉक्टरों द्वारा छिपाया जा रहा है।

घोषित रूप से 475 रासायनिक दवाओं के अलावा करीब 1,500 दूसरी दवाओं का परीक्षण भी वैध और अवैध तरीके से देश के तमाम अस्पतालों और संस्थानों में किया जा रहा है। मध्यप्रदेश के इंदौर में अलग-अलग अस्पतालों में पांच डाक्टरों ने 3,202 मरीजों को बताये बिना ही उन पर रासायनिक दवाओं का परीक्षण किया।

इन्हीं परीक्षणों के दौरान दवाओं के दुष्प्रभाव के चलते कुछ मरीजों को जान से हाथ धोना पड़ा। मौत के सौदे में भागीदारी करने वाले डॉक्टरों को इनाम के तौर पर इन दवा कम्पनियों ने तीन करोड़ 57 लाख रुपये उनके निजी खातों में जमा कराये। इन्हीं पांच में से एक डॉक्टर चिकित्सकीय नैतिकता कमिटी के संयुक्त सचिव रह चुके हैं और एक विभागाध्यक्ष के पद पर तैनात रहे हैं। भोपाल मेमोरियल हॉस्पिटल एंड रिसर्च सेंटर की स्थापना गैस पीड़ितों के मुक्त इलाज के लिए की गयी थी। वहां मुफ्त इलाज के बजाये इन पीड़ितों को मुफ्त में मौत मिल रही है। इन मौतों के एवज में डॉक्टरों की जेबें लगातार गरम की जा रही हैं। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने 15 दवाओं का परीक्षण गैस पीड़ितों के ऊपर किया, जिनमें से सिर्फ तीन परीक्षणों के दौरान ही 13 मरीजों की मौत हो गयी। अभी तक अस्पताल, डॉक्टरों और दवा कम्पनियों के खिलाफ़ कोई कार्रवाई नहीं हुई है। उल्टे अस्पताल के अधिकारियों ने उन पीड़ितों का नाम बताने से मना कर दिया, जिन पर परीक्षण किया गया। बहाना यह बनाया कि इससे उनकी निजता (प्रतिष्ठा) का हनन होगा। सिर्फ दस दवा परीक्षण कराने के बदले अस्पताल को एक करोड़ से भी अधिक रुपये हासिल हुए।

इंदौर (मध्य प्रदेश) के महात्मा गांधी चिकित्सा महाविद्यालय में शिशु रोग विशेषज्ञ ने करीब 2700 लड़कियों पर ह्यूमन पेप्लिना वायरस की दवा का परीक्षण किया। विचित्र बात यह है कि मध्यप्रदेश में इस बीमारी का कहीं कोई नामोनिशान नहीं। दवा परीक्षणों के लिये अलग-अलग जनजातियों और बीमारियों वाले इलाकों के निर्धारित मानकों को ध्यान में रखना जरूरी होता है। उसी के अनुरूप दवा परीक्षण किया जाता है। लेकिन देशी-विदेशी दवा कम्पनियों स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों के साथ मिलीभगत करके सभी कानूनों और मानकों की अवहेलना कर अपने हित साधने में लगी है।

इतनी बड़ी तादाद में मौतों के बाद भी स्वास्थ्य मंत्रालय मौन है और न्यायालय के आदेश के होते हुए भी स्वास्थ्य मंत्रालय और नर पिशाच दवा कम्पनियों के कान पर जूं तक नहीं रेंग रही है। कुछ याचिकाओं की सुनवाई करते हुए सर्वोच्च न्यायालय ने 20 जनवरी 2013 को आदेश दिया कि कोई भी दवा परीक्षण स्वास्थ्य सचिवों की निगरानी में ही किया जाय और मरीजों को पहले ही अवगत करा दिया जाय कि उनके ऊपर जिस दवा का परीक्षण किया जा रहा है और उसके कारण उनके स्वास्थ्य पर क्या-क्या बुरा प्रभाव पड़ने की आशंका है। साथ ही, मरीज का स्वास्थ्य बीमा कराना भी अनिवार्य होगा। इस मसले पर सख्ती बरतते हुए सुप्रीम कोर्ट ने इन नियमों का उल्लंघन करने वालों के लिये पांच से दस साल की कैद का भी प्रावधान किया है। लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने स्वास्थ्य विभाग के जिन सचिवों को गरीब मरीजों की देखरेख की जिम्मेदारी दी है, वे रक्षक ही हमारे भक्षक बन जायें, तो क्या होगा?

मरीजों के स्वास्थ्य और जीवन से बेपरवाह इन दवा कम्पनियों और स्वास्थ्य विभाग ने सांठ-गांठ करके आज तक न जाने कितने लोगों को अपना शिकार बनाया होगा। कितने लोग इन दवा कम्पनियों के अवैध और अघोषित परीक्षण के कारण अपनी जान से हाथ धो बैठे होंगे। और कितने ही लोग स्वास्थ्य सम्बंधी समस्याओं से ग्रसित होकर कष्टपूर्ण जीवन जीने को मजबूर होंगे। ऐसे लोगों का हिसाब भला कौन रखता है?

इंसानों की जान से खेलने वाली इन दवा परीक्षण कम्पनियों का मुनाफ़ा दिन-दुना, रात-चौगुना बढ रहा है। भारत में इनका कारोबार लगभग 25,000 करोड़ रुपये पहुंच गया है। इन सच्चाइयों को देखकर तो यही लगता है कि दवा परीक्षण का कारोबार एक वहशियाना व्यापार में तब्दील हो गया है।

बड़ा सवाल यह है कि जिन दवाओं का परीक्षरण पहले जानवरों पर किया जाता है, वह भी हमारे देश में सीधे इंसानों पर क्यों और जिन दवाओं की कोई जरूरत हमारे देश में है ही नहीं, उन दवाओं का परीक्षण क्यों?

दरअसल मुनाफ़े पर आधारित मौजूदा लूटतंत्र में पैसा ही सब कुछ है। इसमें सभी पेशों, व्यवसायों और कर्तव्यों का फैसला मुनाफ़े से होता है। देशी-विदेशी कम्पनियों द्वारा दवा परीक्षण के नाम पर बिना बताये दवा के बदले जहर देकर धीमी मौत मारना क्या इरादतन हत्या नहीं है? क्या हम ऐसी ही ठंडी मौत मरते रहें?

-देश-विदेश

अंधविश्वास के सौदागरों ने बलि चढ़ाया दाभोलकर को

पुणे में गत 20 अगस्त को तर्कशील आंदोलन के अगुआ एवं महाराष्ट्र अंधश्रद्धा निर्मूलन समीति के अध्यक्ष नरेन्द्र अच्युत दाभोलकर की हत्या हो गयी। 67 वर्षीय दाभोलकर एक गांधीवादी एवं समाजवादी के रूप में जाने जाते थे। काफ़ी समय से यह आशंका जताई जा रही थी कि अंधविश्वासों के विरूद्ध चलाये जा रहे उनके अभियान के चलते चमत्कारी-व्यापार के मुनाफ़ाखोर ढोंगियों द्वारा उन्हें क्षति पहुंचाई जा सकती थी। दाभोलकर ने एक सच्चे गांधीवादी के रूप में सन् 1983 से तमाम धमकियों एवं हमलों के इतिहास के बावजूद, पुलिस-सुरक्षा लेने से यह कह कर इन्कार किया कि यदि मुझे अपने ही देश में अपने ही लोग़ों से सुरक्षा लेने की जरूरत पड़ेगी तो शायद मुझ में ही कुछ कमी है। मैं संवैधानिक ढांचे के अन्तर्गत अपना संघर्ष कर रहा हूं और यह किसी के विरुद्ध न हो कर सभी के लिये है।

दाभोलकर ने 2010 में महाराष्ट्र राज्य में एक जादू-टोना विरोधी विधेयक का मसौदा तैयार किया था। इस बिल को तमाम हिन्दू अतिवादी संगठनों एवं बरकारी सम्प्रदाय ने विरोध किया। भारतीय जनता पार्टी एवं शिवसेना भी इस विरोध में यह कह कर शामिल रहे कि इस बिल से हिन्दू संस्कृति, रीति-रिवाज तथा परम्परायें बुरी तरह प्रभावित होगी। कईयों ने दाभोलकर को धर्मविरोधी भी कहा। पर दाभोलकर ने ए एफ पी को दिये अपने साक्षात्कार में कहा, ''सारे बिल में एक शब्द भी ईश्वर या धर्म के बारे में नहीं है। भारतीय संविधान धर्म की स्वतंत्रता की गारंटी देता है और कोई भी इसे छीन नहीं सकता। यह बिल धोखाधड़ी एवं शोषण करने वाले तौर तरीकों के ख़िलाफ़ है।'' हत्या से करीब 2 सप्ताह पहले ही दाभोलकर ने ज़ोर-शोर से कहा था कि उपरोक्त बिल को राज्य विधानसभा के सात सत्रों में रखे जाने के बावजूद, उस पर बहस नहीं की गयी है। उन्होंने महाराष्ट्र के कांग्रेसी मुख्यमंत्री पृथ्वीराज चौहान पर प्रगतिशील विचारों का गला घोंटने का आरोप लगाया था। महाराष्ट्र सरकार जागी तो सही पर दाभोलकर की हत्या के बाद। 21 अगस्त को राज्य मन्त्रिमंडल ने इस बिल को अध्यादेश के रूप में पारित किया। हालांकि यह कानून लागू तभी हो पायेगा जब केन्द्रीय संसद भी इसे स्वीकृति प्रदान कर दे। दाभोलकर का जन्म 1 नवम्बर 1945 को 10 भाई-बहनों के परिवार में सबसे छोटे बच्चे के रूप में हुआ। इनके पिता का नाम अच्युत व मां का नाम तारा बाई था। उन्होंने अपनी स्कूली पढ़ाई सतारा एवं सांगली में की व मिराज मेडिकल कॉलेज में पढ़ कर एक डॉक्टर बने। उनकी पत्नी का नाम शैला है और उनके दो बच्चे हामिद एवं मुक्ता हैं। वे कबड्डी के राज्य स्तर के खिलाड़ी रहे।

12 वर्ष डॉक्टर के रूप में कार्य करने के बाद 1980 के दशक में उन्होंने समाजसेवा का रास्ता अपनाया। शुरू में वे बाबा अधवा के 'एक गांव-एक कुआं' के आन्दोलन में शामिल रहे। धीरे-धीरे उनहोंने अंधविश्वास के खात्में पर ध्यान देना शुरू किया और अखिल भारतीय अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति में शामिल हुए। 1989 में उन्होंने इस समिति की महाराष्ट्र इकाई का गठन किया और ढोंगी तांत्रिकों एवं भ्रष्ट धर्मवेत्ताओं के 'जादूई इलाजों' के विरुद्ध मोर्चा खोल दिया। उन्होंने देश की जनता को बरगलाने वाले व्यवसाई 'भगवानों' के पाखंड को भी लताड़ने की मुहिम शुरू की। उन्होंने सतारा में 'परिवर्तन' नामक एक पुनर्स्थापना केन्द्र की स्थापन की। दाभोलकर 'साधना' नामक प्रमुख मराठी साप्ताहिक के सम्पादक भी थे।

1990 से 2010 तक दाभोलकर लगातार दलितों के शोषण एवं जातिगत भेदभाव के विरुद्ध आन्दोलनों में शामिल रहे। इस दौरान उन्होंने कई पुस्तकें लिखी और 3000 से अधिक सार्वजनिक सभाओं को सम्बोधित किया। मार्च 2013 में जब ढोंगी-बलात्कारी 'सन्त' आसाराम ने नागपुर में होली खेलने के नाम पर सूखे से ग्रसित विदर्भ क्षेत्र के लोग़ों की भावनाओं की परवाह न करते हुए 50000 लीटर पानी बर्बाद किया, तो दाभोलकर के नेतृत्व में उसे नंगा करने का काम अंजाम दिया गया।

20 अगस्त, 2013 को सुबह टहलते हुए पुणे के ओंकारेश्वर मंदिर के पास दो हत्यारों ने दाभोलकर को करीब से 4 गोलियां मारी जिनमें से 2 उनके सिर एवं छाती पर लगी। ससून अस्पताल में इलाज के दौरान उनकी मृत्यु हो गयी। 21 अगस्त को सारा पुणे उनकी स्मृति में बंद रहा। 'मज़दूर मोर्चा' परिवार इस साहसी समाजसेवी के प्रति अपनी प्रतिबद्धता प्रगट करते हुए आह्वान करता है कि हम सभी उनसे प्रेरणा लेते हुए अंधविश्वास को अपने जीवन से समाप्त करें। ■

शिक्षा में नव उदारवादी नीतियां और भारतीय

नव उदारवादी नीतियों ने भारतीय समाज में असमानता, बेरोज़गारी, गरीबी, आदि समस्याएं उत्पन्न की हैं। नव उदारवादी नीतियों का मुख्य सिद्धांत यह है कि शिक्षा, स्वास्थ्य, रोज़गार, घर, दवा, आदि सुविधाएं देना राज्य की जिम्मेदारी नहीं होनी चाहिए बल्कि उसको बाजार के हाथों सौंप देना चाहिए। पूंजी का विकास होने से मज़दूरों को भी छन-छनकर विकास का कुछ परिणाम मिल जायेगा। अभी इसी वर्ष वृहत्तर म्युनिसिपल कार्पोरेशन (बीएमसी), मुंबई ने अपने स्कूल पीपीपी (पब्लिक प्राइवेट पार्टनरशिप)मोड पर देने का। निर्णय लिया है।

बीएमसी भारत का सबसे धनी म्युनिसिपल कार्पोरेशन है जो 1174 स्कूलों में 11,500 शिक्षकों के साथ 4,00,000 बच्चों को कक्षा 8 तक की शिक्षा देता है। बीएमसी के 18 स्कूल मानसिक रूप से अपंग बच्चों के लिये एवं 55 स्कूल अंग्रेजी माध्यम से चल रहे हैं । बीएमसी अपनी कुल आय का 8 प्रतिशत से 9 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करता है। इस वर्ष 2,342 करोड़ रुपये खर्च किये गये। जो पिछले वर्ष से 650 करोड़ ज़्यादा हैं। एक छात्र पर 36, 750 रुपये की राशि। यह देश में सबसे अधिक है। उपस्थिति छात्रों की संख्या पिछले वर्षों से कम हुई है। इन स्कूलों में ग़रीब से ग़रीब बच्चे पढ़ने आते हैं।

मुंबई भारत के कुल राष्ट्रीय कर संग्रह का 33 प्रतिशत एकत्र करता है। भारत की प्रति व्यक्ति आय वार्षिक 29,382 रुपया है, लेकिन मुंबई की 65, 361 रुपया है। इन स्कूलों में अनुसूचित एवं अनुसूचित जन जातियों, अन्य पिछड़ा वर्ग, मुस्लिम, इसाई पृष्ठभूमि के छात्र पढ़ने आते हैं। 23 जनवरी, 2013 को बीएमसी ने बिना अभिभावकों एवं ध्यापकों की सलाह के इन स्कूलों को पीपीपी मोड पर देने का फ़ैसला कर लिया। यह निर्णय विश्व बैंक और डिपार्टमेंट फॅार इन्टरनेशनल डेवलपमेंट (डीएफआईसी) के साथ सहमति के बाद लिया गया है। यह संगठन प्रचारित करते हैं कि शिक्षा के क्षेत्र में ट्रस्ट और एनजीओ काफ़ी बेहतर काम कर रहे हैं।

आकांक्षा, असीमा और नंदी फाउंडेसन द्वारा गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देने की बात कही गयी। यह बात इसलिए गलत है क्योंकि पिछले 125 वर्षों में इन एनजीओ या ट्रस्टों द्वारा एक भी गुणवत्तापूर्ण स्कूल चलाने का उदाहरण नहीं है। आकांक्षा ट्रस्ट द्वारा एक स्कूल, कॉटन ग्रीन एरिया में संचालित किया जा रहा है। जिसमें मात्र एक अध्यापक

है। पीपीपी मोड का सिद्धांत कोई अभी का नहीं है। यह निजीकरण की नीति का ही एक दूसरा रूप है। पब्लिक संसाधनों को प्राइवेट हाथों में देने की एक प्रक्रिया है। भारत में सर्वप्रथम पीपीपी का सिद्धांत भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) नीत राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एनडीए) ने अपने घोषणा-पत्र में 1999 में शामिल किया था। एनडीए सरकार ने अपने कार्यकाल में एक कमेटी गठित की। इस कमेटी ने इस योजना को योजना आयोग को स्थानान्तरित कर दिया। 2004 के बाद कांग्रेस के नेतृत्व में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यूपीए)की सरकार ने इस समिति का काम जारी रखा और रिपोर्ट प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह को सौंप दी।

सितंबर, 2007 में मनमोहन सिंह ने योजना आयोग की बैठक में शिक्षा के सभी स्तरों में पीपीपी व्यवस्था को लागू करने की घोषणा कर दी। ग्यारहवीं एवं बारहवीं पंचवर्षीय योजनाओं में कार्पोरेट घरानों, एनजीओ और धार्मिक संगठनों को इस शिक्षा व्यवस्था में शामिल करने की सिफ़ारिश की है। सरकार इन निजी संस्थानों को काफ़ी कम मूल्य पर ज़मीन, पानी, बस सर्विस, आयकर में छूट आदि देती है। लेकिन इनके द्वारा कोई भी बड़ा स्कूल विकसित नहीं किया गया। हालांकि दो-तीन हज़ार करोड़ रुपया में बीएमसी इन स्कूलों को चला सकती थी। अब पीपीपी मोड के जरिय इनका निजीकरण किया जा रहा है।

-शाकिब अली